आर्य्य धर्म प्रकाश

लेखक

अगस्त्य सन्यासी

आनरेरी प्रिंसिपल राधा कृष्ण हाई स्कूल जगराओं

भूतपूर्व धनपतराय बी. ए. एल. एल. बी वकील.

[illegible]ति
[illegible] हज़ार प्रति

मूल्य
[illegible]) आ०

"अमृत विद्युत प्रैस" रेलवे रोड, लाहौर में
पं० ईश्वरदास भार्गव के प्रबन्ध से छपा।

विषय सूची

* ओ३म् *

आर्य्य धर्म प्रकाश

१—आर्य शब्द के अर्थ—

यास्कमुनि अपने निरुक्त नामी ग्रन्थ में आर्य शब्द का अर्थ करते हुए लिखते हैं कि अर्य—अर्थात् परमात्मा के पुत्रों को आर्य कहा जाता है।

प्रश्न उठता है कि परमात्मा के पुत्र तो सारी सृष्टि ही है, इसलिए यहां सुपुत्र का भाव लेना उचित है। अर्थात् वह लोग जो "अनुव्रतः पितु पुत्रः । (पुत्र वह है जो पिता के व्रत के पीछे चलने वाला हो) श्रुति के अनुसार परमात्मा के सच्चे आत्मज हों। परमात्माके गुणों से युक्त और परोपकारी पुरुषों को आर्य कहा जाता है॥

२—धर्म—

धारना अर्थात् जिसको उर्दू वाले अमल और अंग्रेजी वाले Performance of duty कहते हैं, जैमिनि ऋषि ने उत्तर मीमांसा में कर्तव्य को ही धर्म लिखा है, मन्तव्य आदि इस शब्द में नहीं आते।

३–आर्य धर्म—

भगवान् मनुने आर्य धर्म की व्याख्या करते हुए लिखा है—

धृतिक्षमादमोऽस्तेयं शौचमिन्द्रियनिग्रहः।
धीर्विद्या सत्यमक्रोधो दशकं धर्म लक्षणम् ॥

अर्थात् दश कर्मों का नाम धर्म है, वह दश कर्म यह हैं–धैर्य्य, क्षमा, शत्रुओं का दमन, चोरी न करना, शुद्धि (मन, वाणी कर्म) इन्द्रियों को वश में रखना बुद्धि को बढ़ाना, विद्या प्राप्त करना, सत्य आचरण करना और सत्य बोलना, क्रोध न करना, जो यह दश कर्म करे वही आर्य है ॥

४–संसार में ऋषियों ने दो पथ बताए हैं एक भोग दूसरा त्याग—

कुछ लोग कहते हैं कि संसारको अच्छी तरह भोगो कुछ कहते हैं कि यह असार है इसलिये इसका त्याग ही अच्छा है—

प्रायः देखा जाता है कि दोनों ही अति की ओर लेजाकर मनुष्य को नाश कर देते हैं, ग्रीस अर्थात् यव" देश में भी यह दोनों मत अलग अलग प्रचलित

रहे पर उनको इनके मेल का पता न लगा जोकि वेद में स्पष्ट कहा गया है, यजु० अध्याय ४० मंत्र १ में लिखा है "त्यक्तेन भुञ्जीथा" अर्थात् ऐ पुरुषो ! संसार को त्याग कर भोगो, भोगों पर लिप्त न होवो मन सदैव परमात्मा की ओर लगाए रहो, जैसे कमलका फूल पानी में रहता हुआ भी पानी से ऊपर रहता है।

भगवान् कृष्ण जी ने भी गीता में इसी का विस्तार किया है और निष्काम कर्म को ही इस संसार से पार होने का सब से उत्तम पथ निश्चय किया है।

५—वेद बतलाते हैं कि ऐसा आचरण वही पुरुष कर सकता है जो अपने जीवन को यज्ञ रूप समझे अर्थात् उसका प्रत्येक कर्म यज्ञ के निमित्त हो, स्वार्थ रत्ती भर भी न हो। धर्म का नाम यज्ञ है अंग्रेजी में इसको Duty कहते हैं, लिखा है कि हे परमात्मन् ! मेरी आंख, नाक, कान आदि सब इन्द्रियां मेरी आयु तथा मेरा जीवन भी यज्ञ के ही वास्ते हो और तो क्या मेरा यज्ञ भी यज्ञ के लिये हो। यजु० अध्याय १८ मंत्र ३० ऐसा बनने के लिये इस प्रकार कर्म करो।

६—पञ्च महायज्ञ—

हर एक आर्य को यह पांच कर्म प्रतिदिन करने आवश्यक हैं,

(क) ब्रह्मयज्ञ, अर्थात् स्वाध्यायः

प्रतिदिन ब्राह्म मुहूर्त में उठकर नित्यकर्म कर पहले कुछ वर्षों तक वेद को पढ परमात्मा के स्वरूप का ज्ञान प्राप्त करे, स्वाध्याय थोड़े समय करना परन्तु करना प्रतिदिन जब परमात्मा के स्वरूप का ज्ञान हो जावे तो योग साधन द्वारा उसका अनुभव अर्थात् मेल प्राप्त करने का यत्न करना।

(ख) देवयज्ञ अर्थात् संसार की भेषज्य और दैवी शक्तियां पुष्ट करना जिस से वह शक्तियां शुद्ध पवित्र रह कर हमें पुष्ट करती रहें। जिस प्रकार पृथिवी में बीजा हुआ दाना सहस्र गुणा होकर हमको मिलता है उसी तरह इस यज्ञ में दिये हुए पदार्थ हमको सहस्र गुणा फल-दायक होते हैं, इसीलिए यजुर्वेद में लिखा है कि हे यज्ञ ? तू शतधारा है, तू सहस्रधारा है.

मनुष्यके जीवन का आधार प्राण है और शुद्धवायु को ही प्राणवायु कहते हैं. यदि एक मुहूर्त हमको शुद्धवायु

न मिले या अशुद्धवायु मिले तो हमारा जीवनान्त होजावे, इसलिये वेद में लिखा है—

" वायो ! त्वमेवप्रत्यक्षं ब्रह्मासि " अर्थात् हे वायु ! तू ही प्रत्यक्ष ब्रह्म है. फिर इस वायु में यदि पुष्टि कारक और रोग नाशक पदार्थों के प्रमाणु मिला दिये जावें और उस वायु को हम सांस में लिया करें तो और भी अधिक लाभ होगा. वायु में जो हानिकारक- रोग उत्पन्न करने वाले कृमि या प्रमाणु मिलते रहते हैं वह भी हमें किसी प्रकार नष्ट करते रहना नितान्त आवश्यक है इसलिए हरएक आर्य को चाहिए कि प्रतिदिन प्रातः सायं अग्निकुण्ड में अग्नि प्रज्वलित कर उस में सुगन्धिदायक-पुष्टिकारक रोग नाशक पदार्थ हवन कर वायु मण्डल को अपने लिए तथा संसार के लिए लाभदायक बनाता रहे वायु में जो प्रमाणु होते हैं वही वृष्टि के साथ वर्षा करते हैं और वही खेतों में पड़कर अन्न को अपना असर दे देते हैं इसी आशय को लेकर गीता में कहा है ।

अन्नाद्भवन्ति भूतानि पर्जन्यादन्नसम्भवः ।
यज्ञाद्भवति पर्जन्यो यज्ञः कर्मसमुद्भवः ॥
अ० ३ श्लो० १४

इसलिए अच्छा अन्न पैदा करना चाहो तो भी हवन करना उचित है, देवयज्ञ का एक और भी लाभ है, इस यज्ञ के कारण घर के सभी नर नारी बच्चे नौकर प्रतिदिन सायं प्रातः इकठ्ठे होकर परमात्मा का पूजन करते रहेंगे, अलग अलग कोई करे, कोई न करे इस तरह सबको अवश्य सम्मिलित होना पड़ेगा ।

(ग) अतिथि यज्ञ—

अर्थात् देशविदेश के विद्वान् सन्त महात्माओं की सेवा करना और प्रतिदिन इन में से किसी एक को भोजन खिलाकर आप भोजन करना जिससे यह लोग हमारे घरों में आते रहें और हमारा उपकार करते रहें,

(घ) पितृयज्ञ अर्थात् पितरों के ऋण से उऋण होने का उपाय प्रसिद्ध ही है कि पुत्र, अर्थात् नरक से बचाने वाली अच्छी सन्तान उत्पन्न करना और उसको ऐसा सुयोग्य बनना जिससे वह हमारे पूर्वजों के यश को

कलङ्कित न होने दे और प्रचलित भी रक्खे, यही वास्तविक पितृयज्ञ है,

पितृसंज्ञा वाले अर्थात् सोसाइटी की सेवा में लगे हुए सज्जनों की सेवा करना और उन के कार्य में सहायक होना भी इस यज्ञका भाग है,

(ङ) वैश्वदेव यज्ञ—

मनुष्य के हितकारी प्राणीमात्र के निमित्त प्रतिदिन कुछ देना या कोई कर्म करना इस में लंगड़े लूले बूढे निर्धन दरिद्र आदि मनुष्य तथा घरेलू जीव, पक्षी, पीपल, वट, आम्र, आदि वृक्ष सभी आगए।

तीन अग्नियां या ज्योतियां जो सुख चाहने वाले हरएक गृहस्थी को सदैव प्रज्वलित रखनी चाहिए

१—परिश्रमी (मेहनती) धर्मात्मा मीठा बोलने वाली और गृहकार्यों में कुशल तथा चतुर स्त्री,

जैसे एक पहिये से गाड़ी नहीं चल सकती इसी तरह स्त्री के बिना गृहस्थ नहीं रह सकता। स्त्री को शास्त्रों में गृहाग्नि कहा गया है जिस को यज्ञ के साथ २४ घण्टे प्रसन्न और प्रज्वलित रखना हर एक गृहस्थी के सुख का मूल आधार है,

२—पुरोहित अर्थात् गुरू—

यह गृहस्थी के धर्म का संरक्षक होता है और उसको धर्म पर से गिरने या कुमार्ग में जाने से बचाता है, सांसारिक बातों में भी अपने उपदेश और सहायता से उसका सहायक होता है जब २ गृहस्थियों पर कोई विपत्ति आती रही है तो पुरोहित लोग अपना शरीर अर्पण करके भी उनकी सहायता करते रहे हैं, गृहस्थियों के बालकों की शिक्षा भी पुरोहित ही करते थे इसलिए हर एक आर्य को चाहिये कि अच्छे से अच्छे विद्वान् और परोपकारी, त्यागी, पुरुष को अपने कुल का पुरोहित नियत करे और सदैव प्रसन्न रक्खे शास्त्रों में पुरोहित को आह्वनीय अग्नि कहा है

३—दाक्षिणाग्नि—

सद्गुणों से युक्त अच्छी सन्तान प्रसिद्ध ही है कि जिस के सन्तान न हो उसका घर बिना दीपक सदृश अन्धकार युक्त होता है, पितृ ऋण से मुक्त होने का भी यही एकमात्र उपाय है पर बुद्धि हीन सन्तान की अपेक्षा सन्तान हीन रहना अच्छा है इसवास्ते प्रत्येक आर्य को चाहिये कि सदैव अपनी सन्तान को

अच्छा बनाने का प्रयत्न करता रहे. सन्तान को ही शास्त्रों में दक्षिणाग्नि कहा गया है. (ऐतेरेय ब्राह्मण)

८—आश्रम अर्थात् समय विभाग—

सब कोई जानते हैं कि यदि समय विभाग करके कार्य किये जावें तो हर एक कार्य्य अपने २ समय पर ठीक भी होजाता है और कोई कार्य शेष भी नहीं रह जाता इसी लिए स्कूलों आदि में टाइम टेबल (Time-Table) बनाया जाता है इसी तरह मनुष्य को भी चाहिये कि अपने जीवन का (Time Table) बना लें जिससे उस के लोक परलोक दोनों सिद्ध हो जावें मनुष्य की आयु १०० वर्ष की गिनी गई है उपरोक्त अभिप्राय की सिद्धि के लिए हमारे शास्त्रकारों ने इन १०० वर्षों को इस प्रकार बांटा है ५० वर्ष लोकसिद्धि के लिए और ५० वर्ष परलोक सिद्धि के लिए पहिले ५० में से २५ वर्ष ब्रह्मचर्य अर्थात् व्रत और विद्याप्राप्ति द्वारा शरीर और बुद्धि दोनों को पुष्ट करना और पुष्ट कर फिर २५ वर्ष तक गृहस्थ करना। इस तरह सांसारिक प्यास बुझा कर ५० की आयु में अपने सांसरिक

कार्य अपने पुत्रों को सौंप कर बन को चले जाना. २५ वर्ष बन में रह कर स्वाध्याय, एकान्त बास और तपस्या द्वारा अपने को पूर्ण त्यागी बना लेना, फिर सन्यासी होकर २५ वर्ष देश विदेश घूम गृहस्थियों को सदुपदेश द्वारा धर्मोपदेश करना।

९—समाज या सोसाइटी में स्त्री जाति का स्थान।

आर्य लिटरेचर में स्त्री को अर्धांगिनी कहा है, जहां पुरुष के लिये देव, नर, पति, कहा है वहां स्त्री को नारी, देवी, पत्नी कह कर बराबर का दर्जा दिया गया है, शास्त्रों में पुरुष और स्त्री के परस्पर संबन्ध को इस प्रकार भी वर्णन किया गया है पुरुष द्यौ है और स्त्री पृथिवी है, पुरुष आदित्य है और स्त्री चन्द्रमा है, पुरुष प्राण है और स्त्री रयै है, पुरुष जीवात्मा है तो स्त्री जीवात्मा का शरीर है; पुरुष का कोई यज्ञ स्त्री के बिना पूर्ण नहीं हो सकता, आर्य सभ्यता में स्त्री के लिए परदा अर्थात् घर में बन्द रखना कहीं नहीं दीख पड़ता उपनिषदों में लिखा है।

तथा भगवान् मनु ने भी मनुस्मृति में प्रतिपादन किया है—

यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवताः ।
यत्रैतास्तु न पूज्यन्ते सर्वास्तत्राफलाः क्रियाः ॥

अ० ३ श्लो० ५६

जहां नारियों की पूजा होती है वहां ही देवता प्रसन्न होकर विचरते हैं, देवियां ही देवताओं को पैदा कर सकतीं हैं। हिन्दी में भी कहा है—

नारी निन्दा न करो, नारी नर की खान।
नारी ही से उपजे ध्रुव, प्रह्लाद समान ॥

भगवान् मनुजी ने माता को पिता से भी अधिक अधिकार दिया है—

उपाध्यायान्दशाचार्य आचार्याणां शतं पिता।
सहस्रंतु पितॄन्माता गौरवेणातिरिच्यते ॥

अ० २ श्लो० १४५

अर्थात् उपाध्याय से अधिक दशगुणा मान्य आचार्य और आचार्य से सौ गुणा मान्य पिता तथा पिता से हजार गुणा मान्य माता होती है, शास्त्रों में स्त्री को पुरुष का मित्र कहा गया है, विवाह के समय सप्तपदी की रीति की जाती है, अर्थात् वधू को सात पग चला-

या जाता है और हर एक पग पर पति उसको एक से एक उत्तम पदवी देता जाता है, सातवें पगपर पति उसको "मित्रे सप्तपदी भव" यह कह कर पुकारता है ।

१०—मित्रस्य चक्षुषा सर्वाणि भूतानि समीक्षामहे ॥

सारे संसार को मित्रकी दृष्टि से देखो, अर्थात् सबका हित चिन्तन करो, मित्र और अमित्र साधु और दुष्ट के प्रति एक जैसा बर्ताव करना हित नहीं है यथा-योग्य बर्ताव करना चाहिये भगवान् ने गीता में स्पष्ट कहा है—

परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम् ।
धर्मसंस्थापनार्थाय सम्भवामि युगे युगे ॥

अ० ४ श्लो० ८

वेदमें भी लिखा है—

मित्रं सौव्रत्येन रुद्रं दौर्व्रत्येन ।

यजु० अ० ३९ मं० ९

अर्थ—मित्र के प्रति श्रेष्ठ कर्म से और दुष्ट के प्रति दुष्टाचार से बर्तो,

११—अज और अमर तीन शक्तियां,

अर्थात् परमात्मा, आत्मा, और प्रकृति, वेद में लिखा है—

द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया
समानं वृक्षं परिषस्वजाते।
तयोरन्यः पिप्पलं स्वाद्वत्य-
नश्नन्नन्यो अभि चाकशीति ॥

दो पक्षी सदैव इकट्ठ रहने वाले और मित्र (परमात्मा और आत्मा) एक ही वृक्ष (प्रकृति) पर रहते हैं, उन में से एक फलों को खाता है दूसरा (परमात्मा) देखता है, ऋक० मं० १ सू० १६४ मन्त्र २०

१२–पुनर्जन्म—

यदि यह मानलिया जाय कि मृत्युके पश्चात् मनुष्य का कुछ भी शेष नहीं रहता तो भी शास्त्रकार कहते हैं कि पुरुष का अपनी सन्तान के रूप में पुनर्जन्म होता है, प्रत्येक पुरुष विशेष संस्कारों का पुञ्ज होता है, सन्तान में पिता के संस्कार अवश्य जन्म लेते हैं यदि पिता का पुनर्जन्म नहीं होता तो क्या ? यही कारण है कि स्त्री को "जाया" कहा गया है अर्थात् वह जिस में पति स्वयं जन्म लेता है, श्रुति भी इसी अर्थ को कहती है—

आत्मा वै जायते पुत्रः ॥

यदि मृत्यु के पश्चात् मनुष्य की जीवात्मा शेष रहती है तब तो उसका पुनर्जन्म अर्थात् दूसरा शरीर धारण करना आवश्यकीय ही है संसार में सर्वत्र यह नियम काम करता दिखाई देता है कि जैसी कोई वस्तु होती है वह अपने समान दूसरी वस्तु को आकर्षण करती रहती है, मनुष्य के अन्दर बहुत सी पशु वृत्तियां हैं, जिस पुरुष ने पशु वृत्तियों पर विजय प्राप्त करली है उसका तो पुनर्जन्म होता ही नहीं पर जो कोई नहीं प्राप्त कर सकता उस में मृत्यु के समय जो पशुवृत्ति अधिक होगी मृत्युके पश्चात् वह स्वयं उस जगह आकर्षित हुआ चला जायगा जहां उसी पशुवृत्ति का विकाश हो रहा होगा, नियम वही है जो ऊपर बताया गया है अर्थात् समान को आकर्षण करना, आत्मा का अपने बन्धनों को काट सकना शनैः शनैः ही हो सकता है और इस के वास्ते सैकड़ों जन्म होने आवश्यक हैं इसी के लिए उपनिषद् कार लिखते हैं और गीता में भी लिखा है—

प्रयत्नाद्यतमानस्तु योगी संशुद्ध किल्बिषः ।
अनेकजन्म मांसिद्ध स्ततो याति परांगतिम् ॥
अ० ६ श्लो० ४५

अर्थात् अनेक जन्मों में योग सिद्ध होता है तब मनुष्य परमगति को प्राप्त होता है,

१३—कर्म—

जैसा करोगे वैसा भरोगे, जैसा बीजोगे वैसा काटोगे। किसी आदिमी की सिफारिश परमात्मा के इस नियम के विरुद्ध काम नहीं आसकती प्रत्येक कर्म अपना फल रखता है कभी २ किसी एक कर्म के फल को दूसरे कर्म अर्थात् प्रायश्चित (तप) से किसी अंश तक बदला भी जा सकता है। रामायण में लिखा है कि हर एक पाप का प्रायश्चित होसकता है, परन्तु कृतघ्नता का कोई प्रायश्चित नहीं कर्म किए जावो कभी आलस्य को पास न आने दो। बड़े से बड़े और भय पूर्ण कामों में भी हाथ डालने से कभी न झिझको, अपने और अपने पूर्वजों के यश की यत्न से रक्षा करो, पर अपना चित्त शान्त, और ईश्वर परायण रक्खो, वेद में लिखा है " आर्य पुरुषो ! कर्म करते

हुए ही सौ वर्ष जीने की इच्छा करो" यही कारण था कि पुराणे आर्य और आधुनिक हिन्दू भी खटिया में पड़कर मरना बहुत बुरा समझते हैं। संसार संग्राम में युद्ध करते हुए मरना ही उनका आदर्श था। भगवान् कृष्ण ने अर्जुन को ऐसा ही कहा था—

हतो वा प्राप्स्यसि स्वर्गं जित्वा वा भोक्ष्यसे महीम्

गी० अ० २ श्लो० ३६

१४–वर्ण (Caste)

कामों की बांट के नियम के अनुसार प्रत्येक मनुष्य के लिए एक समय में एक ही काम करना अच्छा है। इस प्रकार काम भी अच्छा होगा और स्वयं मनुष्य के लिये और उसकी जाति के लिये भी अधिक लाभदायक होगा, आज कल भी कारखानों में इसी तरह काम बांट कर किया जाता है। यास्क मुनि ने निरुक्त में लिखा है "वर्णो वृणोतेः" अ० २ खण्ड ३ अर्थात् वर्ण वह सामाजिक संज्ञा है जो मनुष्य अपने गुण, कर्म, स्वभाव, से स्वयं प्राप्त करता है, जैसे पुरुष को सुखी और जीवन रखने के लिये मुख, बाहु, ऊरु, और पाद अच्छे होने जरूरी हैं उसी तरह जाति

के उन्नत रखने के लिये विद्वान, बलवान्, धनवान, और सेवक, इन चारों की आवश्यकता है। जो पुरुष इन चारों में से जौन सा काम अच्छा करसके उसकी वही संज्ञा होनी चाहिये। मनुजी ने लिखा है-

योऽनधीत्य द्विजो वेदमन्यत्र कुरुतेश्रमम्।
स जीवन्नेव शूद्रत्व माशु गच्छति सान्वयः

अ० २ श्लो० १६८

१५-किसकी उपासना करनी चाहिए।

उपनिषद् कार लिखते हैं—

ओ३म् इत्येतदक्षरं उद्गीथमुपासीत।

अक्षर अर्थात क्षयरहित अर्थात अमर अविनाशी परमात्मा की उपासना करो जिसका सर्वोत्तम वैदिक नाम ओ३म् है और जो इस सारे संसार का उद्गीत है अर्थात् इस संसार की प्रत्येक वस्तु जिसका राग आलाप रही है,

१६-गुरु मंत्र—

अर्थात् सब से बड़ा उपदेश। गुरु अपने शिष्य को बीज रूप से एक ऐसी बात बताता है जिसके करलेने से उसको लोक और परलोक दोनों प्राप्त हो सकते हैं।

कहावत है "हाथी के पाओं में सब का पांव" एक-बात सिद्ध हो जाने से सब बातें स्वयं ही सिद्ध हो सकती हैं, वह बात यह है कि जैसे अर्जुन के सारथी भगवान स्वयं बने तभी अर्जुन को विजय प्राप्त हो सकी, इसी तरह यदि मनुष्य की बुद्धि के सारथी सर्वज्ञ और सर्वशक्तिमान् परमात्मा स्वयं बन जावें तो मनुष्य को इस संसार में किसी वस्तु की कमी नहीं रह सकती। यही परमात्मा का सब से उत्तम सविता रूप है अर्थात् प्रेरणा करने वाला रूप है जिसकी मनुष्य को इच्छा करनी चाहिये। मनुष्य जो काम करता है बुद्धि से प्रेरित होकर करता है जैसे सविता (सूरज) इस पृथ्वी की आत्मा है इसी तरह यदि परमात्मा मनुष्य की बुद्धि के चलाने वाले हों तो वह कभी कोई भूल नहीं कर सकता और उसको सदैव विजय ही प्राप्त होगी मन्त्र यह है—

भू र्भुवः स्वः तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गोदेवस्य धीमहि धियो योनः प्रचोदयात॥

अर्थ, विद्या, शारीरिकबल और ऐश्वर्य (धनसम्पत्ति)

अर्थात् प्रत्येक आर्य्य को चाहिए कि इन तीनों का प्राप्त करने का पूरा यत्न करे, इन तीनों को प्राप्त करके ही वह इस संसार सागर में सुख से तैर सकता है।

हम सविता देव के उस उत्तम रूप को अपनी बुद्धि में चिन्तन करते हैं जो हमारी बुद्धि को प्रेरणा करे, अर्थात् जिस तरह सविता-सूरज इस पृथ्वी का संचालक है इसी तरह परमात्मा हमारी बुद्धि के संचालक हों।

गीता के अन्त में भी भगवान्‌ने यही बात कही है—

यत्र योगेश्वरः कृष्णो यत्र पार्थो धनुर्धरः।
तत्र श्रीर्विजयो भूतिर्ध्रुवा नीतिर्मतिर्मम॥

जहां योगेश्वर कृष्ण होंगे और जहां धनुर्धारी अर्जुन होंगे (अर्थात् जहां पुरुषार्थी मनुष्य होगा और परमात्मा उसकी बुद्धि के संचालक होंगे) वहां ही लक्ष्मी, विजय, सुख, होगा यह मेरी निश्चय मति (राय) है। इस एक ही मंत्र में सब गुप्तभेद गुरू ने कह दिया है।

१७—मनुष्य जीवन का अन्तिम आदर्श।

स्वर्ग प्राप्ति नहीं परन्तु परमात्मा का तद् रूप होजाना, इसी को भगवान् बुद्धने निर्वाण कहा है अर्थात् परमा-

त्मा के गुणों से युक्त हो जाना और ऐसी शान्ति या सम अवस्था प्राप्त करलेना जिसको संसार का सुख दुःख चलायमान न करसके। इसी अवस्था को वेदान्त वालों ने ईश्वर में मिलजाना, और योगी लोगों ने इश्वर का योग होजाना कहा है, इसका अभिप्राय नष्ट होजाना नहीं परन्तु (Master) या प्रभु पदवी लेना है। इस अवस्था में मनुष्य सारे संसार का उपकारक धर्मी होजाता है, अर्थात् प्रभु की सारी सृष्टि का सच्चा निष्काम सेवक होजाता है, वेद में लिखा है "यो असावादित्ये पुरुषः सोऽहं अस्मि" इसका अर्थ परमात्मा बन जाना नहीं परन्तु परमात्मा के रंग में रंगे जाना है।

१८–पतितोद्धार।

पतितों का उद्धार करना सदैव से हर एक आर्य का कर्तव्य रहा है वेद में लिखा है—

उतदेवा अवहितं देवा देवा उन्नयथाः पुनः।
उतागश्चक्रुषं देवा जीवयथाः पुनः॥

अथर्व. ४–१३.

अर्थात हे विद्वान् आर्यपुरुषो! नीचे गिरे हुओं को

फिरसे उठाओ जिन लोगों ने पाप किया है और उस के कारण नीचे गिर गए उनको फिर से जीवन प्रदान करो, मनुस्मृति में लिखा है वर्ण चार ही हैं पांचवां कोई वर्ण नहीं हैं, इससे सिद्ध है कि जो पुरुष ब्राह्मण क्षत्री वैश्य नहीं हैं, वे सब के सब शूद्र हैं। मनुस्मृति या किसी भी अन्य शास्त्र या स्मृति में शूद्रों से न छूने का तो कहीं नाम ही नहीं है रहा उनके हाथ से पके हुए अन्न को ग्रहण करने का प्रश्न सो मनुजी ने स्पष्ट लिख दिया है—

आर्धिकः कुलमित्रश्च गोपालो दासनापितौ ।
एते शूद्रेषु भोज्यान्ना यश्चात्मानं निवेदयेत् ॥

मनु अ० ४ श्लो० २५३

अर्थात् खेती करने वाले, कुल के मित्र, दास, गोपाल, और नाई इन शूद्रों के हाथ का पका हुआ अन्न खाने योग्य है और उस शूद्र के हाथ का भी जो अपना वृत्तान्त हम से वर्णन करदे।

इस अन्तिम बात में किसी भी शूद्र को शेष नहीं रहने दिया यह सबको ज्ञात ही है कि ब्राह्मण क्षत्री वैश्य तीनों वर्णों के पुरुषों को शूद्रकन्या से विवाह

करलेना शास्त्रोक्त है फिर न छूना और हाथ का पका हुआ न खाना कैसे हो सकता था। भविष्य पुराण में स्पष्ट लिखा है कि ऋषि कण्व मिश्र देश मे १० हजार म्लेच्छ आर्यावर्त में लाए और उन में से कई हजार क्षत्री और वैश्य बना दिए, उनमें से एक पृथु को राजा भी बना दिया। इस तरह शूद्र और म्लेच्छों आदिका उन्नति करके ऊपर के वर्णों में चले जाना इतिहास सिद्ध बात है और इसी तरह अब भी हो सकता है।

१९—स्वतन्त्रता प्रेम।

कोई आर्य्य कभी दास बनने, या बनाये जाने के भाव को स्वप्न में भी सहन नहीं कर सकता था, मनुष्य का दास बनना तो एक ओर रहा। हर एक आर्य्य अपने को परमात्मा के सम्बन्ध में भी पुत्र अथवा सखा ही समझता था। विदेशी एक लेखक ने भी अपनी आर्यन रूल इन इण्डिया नाम पुस्तक में लिखा है "कोई आर्य कभी दास नहीं बनाया जा सकता" यह इस जाति का अधिकार पत्र था।

२०—दान।

"परोपकाराय सतांविभूतयः" अर्थात् सत् पुरुषों का

सर्वस्व परोपकारके ही लिए है। जहां परोपकार और दान की अतिशय प्रसंशा है वहां कुपात्र को दान देना महापाप भी कहा गया है जो दान देने वाले को नष्ट कर देता है इस लिए दान सदैव करना चाहिए परन्तु सुपात्र को चाहिए कुपात्र को कदाचित् कुछ न देना चाहिए।

२१–मृत्यु पर विजय पाना और अमर होना।

ब्रह्मचर्य्य और तप द्वारा शरीर मन, और बुद्धि को भले प्रकार उत्तमोत्तम बनाकर सौ बर्ष या इससे भी अधिक जीने का यत्न करना हर एक आर्य का कर्तव्य होना चाहिए इसी लिए वेदों में लिखा है "अश्माभवतु ते तनु" तेरा शरीर बज्र की तरह होवे।

ब्रह्मचर्य्येण तपसा देवा मृत्युमपाघ्नत।
इन्द्रोह ब्रह्मचर्य्येण देवेभ्यः स्वराभरत्॥

अथर्व सू० ५ मं० १९ काण्ड ११

अर्थात् ब्रह्मचर्य्य और तप से देवताओंने मृत्यु को जीता था, ब्रह्मचर्य्य से इन्द्र देवताओं के लिए आकाशीय ज्योति प्राप्त कर सकता था। "जीवेम शरदः शतम्" हम सौ वर्ष तक जीएं।

"यथा द्यौश्च पृथिवीच न विभीतो न रिष्यतः, एवामे प्राण मा विभेः"

अर्थात् जिस तरह द्यौ और पृथ्वी न किसी से डरते हैं और न कोई इनको हानि पहुंचा सकता है इसी तरह हे मेरे प्राण ! तू कभी किसी मे न डर इत्यादि

भगवान् ने गीता में कहा है ।

वासांसि जीर्णानि यथा विहाय,
नवानि गृह्णाति नरोऽपराणि ।
तथा शरीराणि बिहाय जीर्णा न्यन्यानि
संयाति नवानि देही ॥ अ० २ श्लो० २२

पुराने वस्त्रों को उतार कर जिस तरह पुरुष नये वस्त्र ग्रहण कर लेता है, उसी तरह यह आत्मा पुराने शरीरों को छोड़ कर नये शरीरों को धारण कर लेता है, यही कारण था कि कोई आर्य कभी मृत्यु से न डरता था परंच धर्म में लगा हुआ धर्म युद्ध में मर-जाना अपने लिए सौभाग्य और अच्छे जीवन के लाने वाला जानता था, अभय होने का नाम ही मृत्यु पर विजय पाना है, आर्य योगी मृत्यु को भी ठहरा सकता

है, जैसे भीष्मपितामह ने अपने श्वास दशम द्वार में खैंच कर कई महीने तक मृत्यु को रोके रक्खा था । यजु० अ० ४० में लिखा है ।

विद्यांश्च अविद्यांश्च यस्तद् वेद उभयं सह,
अविद्यया मृत्युं तीर्त्वा विद्यया अमृत मश्नुते

अर्थात् विद्या और अविद्या जो इन दोनों को इकठा जानता है वह अविद्या अर्थात् लौकिक विद्याओं के ज्ञान से मृत्यु को तैर कर आत्मिक ज्ञान से अमृत को प्राप्त होता है, इस लिए हर एक आर्य्य को चाहिए कि लोक और परलोक दोनों ही को जीतने का सदैव प्रयत्न करता रहे ।

२२-वेद—

आर्यों की सबसे पहली पुस्तक का नाम वेद है, सारा जगत मानता है कि ऋग्वेद संसार की लाईब्रेरी में सबसे पुरातन पुस्तक है, यह वेद मन, कर्म, वाणी, विभागानुसार अलग अलग पुस्तक रूप में संग्रह किए हुए हैं, ऋग्वेद मनुष्य के मन को ठीक करता है, यजुर्वेद उसके कर्मों को और सामवेद उसकी वाणी को मीठा बनाता है । अथर्ववेद पुरोहित का वेद है, भिन्न

भिन्न समय में ऋषियों ने इन वेदों में से अपने अपने वाञ्छित विषयों को खोजा और अनेक विषयों पर पुस्तकें लिखीं जैसे ब्राह्मणग्रन्थ, श्रौत और गृह्यसूत्र स्मृति, आरण्यक, उपनिषद्, दर्शन, इत्यादि २ तथा गणित विद्या पर बीज गणित (अलजबरा) ज्यामात्रि (जौमेटरी) धनुर्वेद, (Science of Archery) आयुर्वेद (डाक्टरी) नावविद्या अर्थात् नाव बनाने की विद्या, ज्योतिष, अर्थशास्त्र (Science of Government) शिल्प विद्या की पुस्तकें इत्यादि ।

जब दुनियां की लाईब्ररी में ऋग्वेद सबसे पुराणी पुस्तक है तो स्पष्ट है कि दुनिया के सबसे पुराणे समय के वृत्तान्तों को जानना होतो ऋग्वेद को अवश्य खोजना चाहिये,

३–संसार का हरएक पुरुष आर्य्य बन सकता है, आर्य धर्म सब के लिए खुला है,

केवल इतना ही नहीं परञ्च हरएक आर्य्य का धर्म है कि सब संसार को आर्य्य बनाने का सदैव प्रयत्न करता रहे वेद में लिखा है—

"कृण्वन्तो विश्वमार्य्यम्,, ऋक्० मण्डल ९

अर्थात् सारे संसार को आर्य्य बनाओ ॥